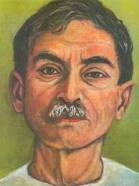
****

Premchand

**Born** 1880

**Died** 1936

**Poetry:**

**माँ कह एक कहानी (काव्य)**

"माँ कह एक कहानी।"  
बेटा समझ लिया क्या तूने मुझको अपनी नानी?"  
"कहती है मुझसे यह चेटी, तू मेरी नानी की बेटी  
कह माँ कह लेटी ही लेटी, राजा था या रानी?  
माँ कह एक कहानी।"  
  
"तू है हठी, मानधन मेरे, सुन उपवन में बड़े सवेरे,  
तात भ्रमण करते थे तेरे, जहाँ सुरभी मनमानी।"  
"जहाँ सुरभी मनमानी! हाँ माँ यही कहानी।"  
  
वर्ण वर्ण के फूल खिले थे, झलमल कर हिमबिंदु झिले थे,  
हलके झोंके हिले मिले थे, लहराता था पानी।"  
"लहराता था पानी, हाँ हाँ यही कहानी।"  
  
"गाते थे खग कल कल स्वर से, सहसा एक हँस ऊपर से,  
गिरा बिद्ध होकर खर शर से, हुई पक्षी की हानी।"  
"हुई पक्षी की हानी? करुणा भरी कहानी!"  
  
चौंक उन्होंने उसे उठाया, नया जन्म सा उसने पाया,  
इतने में आखेटक आया, लक्ष सिद्धि का मानी।"  
"लक्ष सिद्धि का मानी! कोमल कठिन कहानी।"  
  
"माँगा उसने आहत पक्षी, तेरे तात किन्तु थे रक्षी,  
तब उसने जो था खगभक्षी, हठ करने की ठानी।"  
"हठ करने की ठानी! अब बढ़ चली कहानी।"  
  
हुआ विवाद सदय निर्दय में, उभय आग्रही थे स्वविषय में,  
गयी बात तब न्यायालय में, सुनी सब ने जानी।"  
"सुनी सब ने जानी! व्यापक हुई कहानी।"  
  
राहुल तू निर्णय कर इसका, न्याय पक्ष लेता है किसका?"  
"माँ मेरी क्या बानी? मैं सुन रहा कहानी।  
कोई निरपराध को मारे तो क्यों न उसे उबारे?  
रक्षक पर भक्षक को वारे, न्याय दया का दानी।"  
"न्याय दया का दानी! तूने गुणी कहानी।"

- मैथिलीशरण गुप्त

#

**साजन! होली आई है! (काव्य)**

साजन! होली आई है!  
सुख से हँसना  
जी भर गाना  
मस्ती से मन को बहलाना  
पर्व हो गया आज-  
साजन ! होली आई है!  
हँसाने हमको आई है!  
  
साजन! होली आई है!  
इसी बहाने  
क्षण भर गा लें  
दुखमय जीवन को बहला लें  
ले मस्ती की आग-  
साजन! होली आई है!  
जलाने जग को आई है!  
  
साजन! होली आई है!  
रंग उड़ाती  
मधु बरसाती  
कण-कण में यौवन बिखराती,  
ऋतु वसंत का राज-  
लेकर होली आई है!  
जिलाने हमको आई है!  
  
साजन ! होली आई है!  
खूनी और बर्बर  
लड़कर-मरकर-  
मधकर नर-शोणित का सागर  
पा न सका है आज-  
सुधा वह हमने पाई है !  
साजन! होली आई है!  
  
साजन ! होली आई है !  
यौवन की जय !  
जीवन की लय!  
गूँज रहा है मोहक मधुमय  
उड़ते रंग-गुलाल  
मस्ती जग में छाई है  
साजन! होली आई है!

-फणीश्वर नाथ 'रेणु'

'होली' - फणीश्वरनाथ रेणु की पहली कविता थी।

फणीश्वरनाथ रेणु की पहली कविता

**बापू (काव्य)**

संसार पूजता जिन्हें तिलक,  
रोली, फूलों के हारों से,  
मैं उन्हें पूजता आया हूँ  
बापू ! अब तक अंगारों से।  
  
अंगार, विभूषण यह उनका  
विद्युत पीकर जो आते हैं,  
ऊँघती शिखाओं की लौ में  
चेतना नयी भर जाते हैं।  
  
उनका किरीट, जो कुहा-भंग  
करके प्रचण्ड हुंकारों से,  
रोशनी छिटकती है जग में  
जिनके शोणित की धारों से।  
  
झेलते वह्नि के वारों को  
जो तेजस्वी बन वह्नि प्रखर,  
सहते ही नहीं, दिया करते  
विष का प्रचण्ड विष से उत्तर।  
  
अंगार हार उनका, जिनकी  
सुन हाँक समय रुक जाता है,  
आदेश जिधर का देते हैं,  
इतिहास उधर झुक जाता है।

-रामधारीसिंह दिनकर

**अर्जुन की प्रतिज्ञा (काव्य)**

उस काल मारे क्रोध के तन कांपने उसका लगा,  
मानों हवा के वेग से सोता हुआ सागर जगा।  
मुख-बाल-रवि-सम लाल होकर ज्वाल सा बोधित हुआ,  
प्रलयार्थ उनके मिस वहाँ क्या काल ही क्रोधित हुआ?  
  
युग-नेत्र उनके जो अभी थे पूर्ण जल की धार-से,  
अब रोष के मारे हुए, वे दहकते अंगार-से ।  
निश्चय अरुणिमा-मित्त अनल की जल उठी वह ज्वाल सी,  
तब तो दृगों का जल गया शोकाश्रु जल तत्काल ही।  
  
साक्षी रहे संसार करता हूँ प्रतिज्ञा पार्थ मैं,  
पूरा करुंगा कार्य सब कथानुसार यथार्थ मैं।  
जो एक बालक को कपट से मार हँसते हैँ अभी,  
वे शत्रु सत्वर शोक-सागर-मग्न दीखेंगे सभी।  
  
अभिमन्यु-धन के निधन से कारण हुआ जो मूल है,  
इससे हमारे हत हृदय को, हो रहा जो शूल है,  
उस खल जयद्रथ को जगत में मृत्यु ही अब सार है,  
उन्मुक्त बस उसके लिये रौ'र'व नरक का द्वार है।  
  
उपयुक्त उस खल को न यद्यपि मृत्यु का भी दंड है,  
पर मृत्यु से बढ़कर न जग में दण्ड और प्रचंड है ।  
अतएव कल उस नीच को रण-मध्य जो मारूँ न मैं,  
तो सत्य कहता हूँ कभी शस्त्रास्त्र फिर धारूँ न मैं।  
  
अथवा अधिक कहना वृथा है, पार्थ का प्रण है यही,  
साक्षी रहे सुन ये वचन रवि, शशि, अनल, अंबर, मही।  
सूर्यास्त से पहले न जो मैं कल जयद्रथ-वध करूँ,  
तो शपथ करता हूँ स्वयं मैं ही अनल में जल मरूँ।

|  |  |  |
| --- | --- | --- |
| |  |  | | --- | --- | | |  | | --- | | **कलम, आज उनकी जय बोल | कविता** (काव्य) | | |

जो अगणित लघु दीप हमारे,  
तूफ़ानों में एक किनारे,  
जल-जलाकर बुझ गए किसी दिन,  
मांगा नहीं स्नेह मुँह खोल।  
कलम, आज उनकी जय बोल।  
  
पीकर जिनकी लाल शिखाएं,  
उगल रही सौ लपट दिशाएं,  
जिनके सिंहनाद से सहमी,  
धरती रही अभी तक डोल।  
कलम, आज उनकी जय बोल।  
  
अंधा चकाचौंध का मारा,  
क्या जाने इतिहास बेचारा,  
साखी हैं उनकी महिमा के,  
सूर्य, चन्द्र, भूगोल, खगोल।  
कलम, आज उनकी जय बोल।

**मैं नीर भरी दुःख की बदली | कविता (काव्य)**

मैं नीर भरी दुःख की बदली,  
स्पंदन में चिर निस्पंद बसा,  
क्रंदन में आहत विश्व हँसा,  
नयनो में दीपक से जलते,  
पलकों में निर्झनी मचली !  
मैं नीर भरी दुःख की बदली !  
  
मेरा पग पग संगीत भरा,  
श्वांसों में स्वप्न पराग झरा,  
नभ के नव रंग बुनते दुकूल,  
छाया में मलय बयार पली !  
मैं नीर भरी दुःख की बदली !  
  
मैं क्षितिज भृकुटी पर घिर धूमिल,  
चिंता का भर बनी अविरल,  
रज कण पर जल कण हो बरसी,  
नव जीवन अंकुर बन निकली !  
मैं नीर भरी दुःख की बदली !  
  
पथ न मलिन करते आना  
पद चिन्ह न दे जाते आना  
सुधि मेरे आगम की जग में  
सुख की सिहरन हो अंत खिली !  
मैं नीर भरी दुःख की बदली !  
  
विस्तृत नभ का कोई कोना  
मेरा न कभी अपना होना  
परिचय इतना इतिहास यही  
उमटी कल थी मिट आज चली !  
मैं नीर भरी दुःख की बदली !

**आखिर पाया तो क्या पाया? (काव्य)**

जब तान छिड़ी, मैं बोल उठा  
जब थाप पड़ी, पग डोल उठा  
औरों के स्वर में स्वर भर कर  
अब तक गाया तो क्या गाया?  
  
सब लुटा विश्व को रंक हुआ  
रीता तब मेरा अंक हुआ  
दाता से फिर याचक बनकर  
कण-कण पाया तो क्या पाया?  
  
जिस ओर उठी अंगुली जग की  
उस ओर मुड़ी गति भी पग की  
जग के अंचल से बंधा हुआ  
खिंचता आया तो क्या आया?  
  
जो वर्तमान ने उगल दिया  
उसको भविष्य ने निगल लिया  
है ज्ञान, सत्य ही श्रेष्ठ किंतु  
जूठन खाया तो क्या खाया?

**हम पंछी उन्मुक्त गगन के (काव्य)**

हम पंछी उन्मुक्त गगन के  
पिंजरबद्ध न गा पाऍंगे  
कनक-तीलियों से टकराकर  
पुलकित पंख टूट जाऍंगे ।  
  
हम बहता जल पीनेवाले  
मर जाऍंगे भूखे-प्यासे  
कहीं भली है कटुक निबोरी  
कनक-कटोरी की मैदा से ।  
  
स्वर्ण-श्रृंखला के बंधन में  
अपनी गति, उड़ान सब भूले  
बस सपनों में देख रहे हैं  
तरू की फुनगी पर के झूले ।  
  
ऐसे थे अरमान कि उड़ते  
नील गगन की सीमा पाने  
लाल किरण-सी चोंच खोल  
चुगते तारक-अनार के दाने ।  
  
होती सीमाहीन क्षितिज से  
इन पंखों की होड़ा-होड़ी  
या तो क्षितिज मिलन बन जाता  
या तनती सॉंसों की डोरी ।  
  
नीड़ न दो, चाहे टहनी का  
आश्रय छिन्न-भिन्न कर डालो  
लेकिन पंख दिए हैं तो  
आकुल उड़ान में विघ्न न डालो ।

**- शिवमंगलसिंह सुमन**

**खिलौनेवाला  (काव्य)**

वह देखो माँ आज  
खिलौनेवाला फिर से आया है।  
कई तरह के सुंदर-सुंदर  
नए खिलौने लाया है।  
हरा-हरा तोता पिंजड़े में  
गेंद एक पैसे वाली  
छोटी सी मोटर गाड़ी है  
सर-सर-सर चलने वाली।  
सीटी भी है कई तरह की  
कई तरह के सुंदर खेल  
चाभी भर देने से भक-भक  
करती चलने वाली रेल।  
गुड़िया भी है बहुत भली-सी  
पहने कानों में बाली  
छोटा-सा \\\'टी सेट\\\' है  
छोटे-छोटे हैं लोटा-थाली।  
छोटे-छोटे धनुष-बाण हैं  
हैं छोटी-छोटी तलवार  
नए खिलौने ले लो भैया  
ज़ोर-ज़ोर वह रहा पुकार।  
मुन्नूौ ने गुड़िया ले ली है  
मोहन ने मोटर गाड़ी  
मचल-मचल सरला कहती है  
माँ se लेने को साड़ी  
कभी खिलौनेवाला भी माँ  
क्याख साड़ी ले आता है।  
साड़ी तो वह कपड़े वाला  
कभी-कभी दे जाता है।  
अम्मा तुमने तो लाकर के  
मुझे दे दिए पैसे चार  
कौन खिलौने लेता हूँ मैं  
तुम भी मन में करो विचार।  
तुम सोचोगी मैं ले लूँगा  
तोता, बिल्लीा, मोटर, रेल  
पर माँ, यह मैं कभी न लूँगा  
ये तो हैं बच्चों के खेल।  
मैं तो तलवार ख़रीदूँगा माँ  
या मैं लूँगा तीर-कमान  
जंगल में जा, किसी ताड़का  
को मारुँगा राम समान।  
तपसी यज्ञ करेंगे, असुरों-  
को मैं मार भगाऊँगा  
यों ही कुछ दिन करते-करते  
रामचंद्र मैं बन जाऊँगा।  
यही रहूँगा कौशल्याऊ मैं  
तुमको यही बनाऊँगा  
तुम कह दोगी वन जाने को  
हँसते-हँसते जाऊँगा।  
पर माँ, बिना तुम्हाेरे वन में  
मैं कैसे रह पाऊँगा?  
दिन भर घूमूँगा जंगल में  
लौट कहाँ पर आऊँगा।  
किससे लूँगा पैसे, रूठूँगा  
तो कौन मना लेगा  
कौन प्यानर से बिठा गोद में,  
मनचाही चींजे़ देगा।

**भारत-भारती  (काव्य)**

यहाँ मैथिलीशरण गुप्त की भारत-भारती को संकलित करने का प्रयास आरंभ किया है। विश्वास है पाठकों को रोचक लगेगा।

'भारत-भारती' की प्रस्तावना में स्वयं गुप्तजी लिखते हैं-  
"यह बात मानी हुई है कि भारत की पूर्व और वर्तमान दशा में बड़ा भारी अन्तर है। अन्तर न कहकर इसे वैपरीत्य कहना चाहिए। एक वह समय था कि यह देश विद्या, कला कौशल और सभ्यता में संसार का शिरोमणि था और एक समय है कि इन्हीं बातों का इसमें शोचनीय अभाव हो गया है। जो आर्य जाति कभी सारे संसार को शिक्षा देती थी वही आज पराया मुँह ताक रही है ! ठीक है, जिसका जैसा उत्थान, उसका वैसा ही पतन !

परन्तु क्या हम लोग सदा अवनति में ही पड़े रहेंगे ? हमारे देखते-देखते जंगली जातियाँ तक उठकर हमसे आगे बढ़ जायें और हम वैसे ही पड़े रहें, इससे अधिक दुर्भाग्य की बात और क्या हो सकती है ? क्या हम लोग अपने मार्ग से यहाँ तक हट गये हैं कि अब उसे पा ही नहीं सकते ? क्या हमारी सामाजिक अवस्था इतनी बिगड़ गई है कि वह सुधारी ही नहीं जा सकती ? क्या सचमुच हमारी यह निद्रा चिरनिद्रा है ? क्या हमारा रोग ऐसा असाध्य हो गया है कि उसकी कोई चिकित्सा ही नहीं ?

संसार में ऐसा कोई भी काम नहीं जो सचमुच उद्योग से सिद्ध न हो सके। परन्तु उद्योग के लिए उत्साह की आवश्यकता है। बिना उत्साह के उद्योग नहीं हो सकता। इसी उत्साह को, इसी मानसिक वेग को उत्तेजित करने के लिए कविता एक उत्तम साधन है। परन्तु बड़े खेद की बात है कि हम लोगों के लिए हिन्दी में अभी तक इस ढंग की कोई कविता पुस्तक नहीं लिखी गई जिसमें हमारी प्राचीन उन्नति और अर्वाचीन अवनति का वर्णन भी हो और भविष्य के लिए प्रोत्साहन भी। इस अभाव की पूर्ति के लिए जहाँ तक मैं जानता हूं, कोई यथोचित प्रयत्न नहीं किया गया। परन्तु देशवत्सल सज्जनों को यह त्रुटि बहुत खटक रही है। ऐसे ही महानुभावों में कुर्रीसुदौली के अधिपति माननीय श्रीमान् राजा रामपालसिंह जी के. सी. आई. ई. महोदय हैं।

कोई दो वर्ष हुए, मैंने ‘पूर्व दर्शन' नाम की एक तुकबन्दी लिखी थी। उस समय चित्त में आया था कि हो सका तो कभी इसे पल्लवित करने की चेष्टा भी करूँगा। इसके कुछ ही दिन बाद उक्त राजा साहब का एक कृपापत्र मुझे मिला, जिसमें श्रीमान् ने मौलाना हाली के मुसद्दस को लक्ष्य करके इस ढंग की एक कविता पुस्तक हिन्दुओं के लिए लिखने का मुझसे अनुग्रहपूर्वक अनुरोध किया। राजा साहब की ऐसी अभिरुचि देखकर मुझे हर्ष तो बहुत हुआ, पर साथ ही अपनी अयोग्यता के विचार से संकोच भी कम न हुआ। तथापि यह सोचकर कि बिलकुल ही न होने की अपेक्षा कुछ होना ही अच्छा है, मैंने इस पुस्तक के लिखने का साहस किया। श्रीरामनवमी सं. 1968 से आरम्भ करके भगवान् की कृपा से आज मैं इसे समाप्त कर सका हूँ। बीच-बीच में कई कारणों से महीनों इसका काम रुका रहा। इसी से इसके समाप्त होने में इतना विलम्ब हुआ।

मैं नहीं जानता कि मैं अपने पूज्यवर श्रीमान् पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी जी महाराज और माननीय श्रीयुक्त "वार्हस्पत्य" जी महोदय के निकट, उनकी उन अमूल्य सम्मतियों के लिए, जिन्होंने मुझे इस विषय में कृतार्थ किया है, किस प्रकार अपनी कृतज्ञता प्रकट करूँ। सुहृद्वर श्रीयुक्त पण्डित पद्मसिंह जी शर्मा, राय कृष्णदास जी और ठाकुर तिलकसिंह जी का भी मैं विशेष कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मेरा उत्साह बढ़ाकर मुझे सहायता दी है। हाली और कैफी के मुसद्दसों भी मैंने लाभ उठाया है, इसलिए उनके प्रति भी मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। जिन पुस्तकों और लेखों से इस पुस्तक में नोट उद्घृत किये गये हैं, उनके लेखकों के निकट भी मैं विशेष उपकृत हूँ।

मुझे दुख है कि इस पुस्तक में कहीं-कहीं मुझे कुछ कड़ी बातें लिखनी पड़ी हैं, परन्तु मैंने किसी की निन्दा करने के विचार से कोई बात नहीं लिखी। अपनी सामाजिक दुरावस्था ने वैसा लिखने के लिए मुझे विवश किया है। जिन दोषों ने हमारी यह दुर्गति की है, जिनके कारण दूसरे लोग हम पर हँस रहे हैं, क्या उनका वर्णन कड़े शब्दों में किया जाना अनुचित है ? मेरा विश्वास है कि जब तक हमारी बुराइयों की तीव्र आलोचना न होगी तब तक हमारा ध्यान उनको दूर करने की ओर समुचित रीति से आकृष्ट न होगा। फिर भी यदि भूल से, कोई बात अनुचित लिख गई हो तो उसके लिए मैं नम्रतापूर्वक क्षमाप्रार्थी हूँ।

मैं जानता हूँ कि इस पुस्तक को लिखकर मैंने अनाधिकार चेष्टा की है। मैं इस काम के लिए सर्वथा अयोग्य था। परन्तु जब तक हमारे विद्वान और प्रतिभाशाली कवि इस ओर ध्यान न दें और इस ढंग की दूसरी कोई अच्छी पुस्तक न निकले, तब तक, आशा है, उदार पाठक मेरी धृष्टता को क्षमा करेंगे।"

**सुख-दुख | कविता (काव्य)**

मैं नहीं चाहता चिर-सुख,  
मैं नहीं चाहता चिर-दुख,  
सुख दुख की खेल मिचौनी  
खोले जीवन अपना मुख !  
  
सुख-दुख के मधुर मिलन से  
यह जीवन हो परिपूरन;  
फिर घन में ओझल हो शशि,  
फिर शशि से ओझल हो घन !  
  
जग पीड़ित है अति-दुख से  
जग पीड़ित रे अति-सुख से,  
मानव-जग में बँट जाएँ  
दुख सुख से औ’ सुख दुख से !  
  
अविरत दुख है उत्पीड़न,  
अविरत सुख भी उत्पीड़न;  
दुख-सुख की निशा-दिवा में,  
सोता-जगता जग-जीवन !  
  
यह साँझ-उषा का आँगन,  
आलिंगन विरह-मिलन का;  
चिर हास-अश्रुमय आनन  
रे इस मानव-जीवन का !

|  |
| --- |
| [**मैं तो वही खिलौना लूँगा**](https://www.bharatdarshan.co.nz/magazine/literature/531/mai-to-vahi.html)  **-** |
| 'मैं तो वही खिलौना लूँगा'  मचल गया दीना का लाल -  'खेल रहा था जिसको लेकर  राजकुमार उछाल-उछाल ।'  व्यथित हो उठी माँ बेचारी -  'था सुवर्ण - निर्मित वह तो !  खेल इसी से लाल, - नहीं है  राजा के घर भी यह तो ! '  राजा के घर ! नहीं नहीं माँ  तू मुझको बहकाती है ,  इस मिट्टी से खेलेगा क्यों  राजपुत्र तू ही कह तो । '  फेंक दिया मिट्टी में उसने  मिट्टी का गुड्डा तत्काल ,  'मैं तो वही खिलौना लूँगा' -  मचल गया दीना का लाल ।  ' मैं तो वही खिलौना लूँगा '  मचल गया शिशु राजकुमार , -  वह बालक पुचकार रहा था  पथ में जिसको बारबार |  ' वह तो मिट्टी का ही होगा ,  खेलो तुम तो सोने से । '  दौड़ पड़े सब दास - दासियाँ  राजपुत्र के रोने से ।  ' मिट्टी का हो या सोने का ,  इनमें वैसा एक नहीं ,  खेल रहा था उछल - उछल कर  वह तो उसी खिलौने से । '  राजहठी ने फेंक दिए सब  अपने रजत - हेम - उपहार ,  ' लूँगा वही , वही लूँगा मैं ! '  मचल गया वह राजकुमार । |

**मैं और कुछ नहीं कर सकता था  (काव्य)**

मैं क्या कर सकता था   
किसी का बेटा मर गया था   
सांत्वना के दो शब्द कह सकता था   
किसी ने कहा बाबू जी मेरा घर बाढ़ में बह गया   
तो उस पर यकीन करके उसे दस रुपये दे सकता था   
किसी अंधे को सड़क पार करा सकता था   
रिक्शावाले से भाव न करके उसे मुंहमांगा दाम दे सकता था   
अपनी कामवाली को दो महीने का एडवांस दे सकता था   
दफ्तर के चपरासी की ग़लती माफ़ कर सकता था   
अमेरिका के खिलाफ नारे लगा सकता था   
वामपंथ में अपना भरोसा फिर से ज़ाहिर कर सकता था   
वक्तव्य पर दस्तख़त कर सकता था   
  
और मैं क्या कर सकता था   
किसी का बेटा तो नहीं बन सकता था   
किसी का घर तो बना कर नहीं दे सकता था   
किसी की आँख तो नहीं बन सकता था   
रिक्शा चलाने से किसी के फेफड़ों को सड़ने से रोक तो नहीं सकता था   
  
  
और मैं क्या कर सकता था-  
ऐसे सवाल उठा कर खुश हो सकता था  
मान सकता था कि अब तो सिद्ध है वाकई मैं एक कवि हूँ  
और वक़्त आ चुका है कि मेरी कविताओं के अनुवाद की किताब अब  
अंग्रेजी में लंदन से छप कर आ जाना चाहिए।

- विष्णु नागर [हँसने की तरह रोना]

|  |  |
| --- | --- |
| **वन्देमातरम् | राष्ट्रीय गीत (काव्य)** |  |

वंदे मातरम्, वंदे मातरम्!  
सुजलाम्, सुफलाम्, मलयज शीतलाम्,  
शस्यश्यामलाम्, मातरम्!  
वंदे मातरम्!  
शुभ्रज्योत्सनाम् पुलकितयामिनीम्,  
फुल्लकुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्,  
सुहासिनीम् सुमधुर भाषिणीम्,  
सुखदाम् वरदाम्, मातरम्!  
वंदे मातरम्, वंदे मातरम्॥

**माँ गाँव में है (काव्य)**

चाहता था  
आ बसे माँ भी  
यहाँ, इस शहर में।

पर माँ चाहती थी  
आए गाँव भी थोड़ा साथ में  
जो न शहर को मंजूर था न मुझे ही।

न आ सका गाँव  
न आ सकी माँ ही  
शहर में।

और गाँव   
मैं क्या करता जाकर!

पर देखता हूँ  
कुछ गाँव तो आज भी ज़रूर है  
देह के किसी भीतरी भाग में  
इधर उधर छिटका, थोड़ा थोड़ा चिपका।

माँ आती  
बिना किए घोषणा  
तो थोड़ा बहुत ही सही  
गाँव तो आता ही न  
शहर में।

पर कैसे आता वह खुला खुला दालान, आंगन  
जहाँ बैठ चारपाई पर  
माँ बतियाती है  
भीत के उस ओर खड़ी चाची से, बहुओं से।  
करवाती है मालिश  
पड़ोस की रामवती से।  
सुस्ता लेती हैं जहाँ  
धूप का सबसे खूबसूरत रूप ओढ़कर  
किसी लोक गीत की ओट में।

आने को तो  
कहाँ आ पाती हैं वे चर्चाएँ भी  
जिनमें आज भी मौजूद हैं खेत, पैर, कुएँ और धान्ने।  
बावजूद कट जाने के कॉलोनियाँ  
खड़ी हैं जो कतार में अगले चुनाव की  
नियमित होने को।

और वे तमाम पेड़ भी  
जिनके पास  
आज भी इतिहास है  
अपनी छायाओं के।